# जैन धर्म और उसका भारतीय सभ्यता और संस्कृति को योगदान

डॉ० चमनलाल जैन

आज भारतीय इतिहास में जैन और बौद्ध धर्म का उल्लेख ईसा से ६वीं शती पूर्व की धार्मिक क्रान्ति के रूप में साथ-साथ आता है। अतः अधिकांश में यह धारणा बन गई है कि उपर्युक्त दोनों धर्मों का प्रादुर्भाव साथ हुआ था। परन्तु वर्तमान काल में होने वाले अनुसंधानों के आधार पर तथा जैन ग्रन्थों की प्रामाणिक छानबीन से यह तथ्य स्पष्ट हो गया है कि जैन धर्म बौद्ध धर्म से काफी पूर्व का धर्म है। उसके २४ तीर्थंकरों में से दो—नेमनाथ और पार्श्वनाथ—का होना इतिहास ने स्वीकार कर ही लिया है, अन्य तीर्थंकरों को भी शनैः शनैः स्वीकार किया जा रहा है। ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांशनाथ जिनके नाम पर सारनाथ नाम चला आ रहा है तथा महाभारत काल में नेमनाथ का होना सर्वस्वीकृत हो चुका है। पार्श्वनाथ का जन्म ईसा पूर्व ८वीं सदी में काशी में होना और गहन तपस्या में लीन होने के पश्चात् पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति कर "निर्ग्रन्थ" धर्म (जैन धर्म का पूर्वरूप) का प्रचार कर सौ वर्ष के लगभग आयु में मोक्ष प्राप्ति का उल्लेख सुप्रसिद्ध भारतीय इतिहासकार श्री आर० सी० मजूमदार[1] ने भी किया है। ऋग्वेद[2] व सामवेद[3] में भी जैनियों के प्रथम एवं बाईसवें तीर्थंकर श्री ऋषभदेव व अरिष्टनेमि का उल्लेख आया है। अभी हाल की एक खुदाई में हस्तिनापुर में प्राप्त अवशेष भी भगवान् ऋषभदेव की मान्यता की पुष्टि करते हैं। सिन्धु घाटी के उत्खननों और वहाँ की मूर्तियों तथा लिप्याक्षरों को पढ़े जाने के उपरान्त इस धर्म की प्राचीनता उस काल तक स्वीकार की जाने लगी है। कुछ विद्वान् तो पहले ही इस धर्म को वैदिक धर्म से भी पूर्व का प्राचीन धर्म होने की सम्भावना को स्वीकार करते थे।[4] अतः जैन धर्म निर्विवाद ही एक स्वतन्त्र धर्म है और इसका अन्य धर्मों के मूलोद्गमों से कोई सम्बन्ध नहीं है। छठी शताब्दी ईसा पूर्व की स्थिति में भगवान् महावीर का जो उल्लेख इतिहास में आता है वह इसलिये कि उन्होंने तत्कालीन चिन्तनीय सामाजिक और धार्मिक स्थिति में उसे एक नवीन पर्यावरण में प्रस्तुत किया।

उस समय देश में अनेक विचारधाराएं काम कर रही थीं। जैसे—देवतावाद, जड़वाद और अध्यात्मवाद। ये धाराएं केवल कर्मकाण्डों, वितण्डावादों और बाह्य चमत्कारों से लिप्त थीं। भावनाएं संकीर्ण हो चुकी थीं, धर्म के नाम पर हिंसा, विलासिता और शिथिलाचार बढ़ रहा था। मांस, मदिरा और मैथुन में साधारण जनता व्यस्त थी, स्त्री मनुष्य की भोगवस्तु बन चुकी थी, जनता प्रवृत्ति मार्ग पर बहुत आगे बढ़ चुकी थी। यज्ञ-हवन, दान-दक्षिणा से देवी-देवताओं को ब्राह्मणों और पुरोहितों द्वारा खरीदा जा सकता था। कर्मकाण्डों और विश्वासों ने मनुष्य को आत्मविश्वास और पुरुषार्थ से हीन बना कर देवताओं का दास बना दिया था। भगवान् महावीर ने इस दशा से उबारने के निमित्त मनुष्य का दर्जा देवताओं से भी उच्च बताया और उसे उन्नति कर परमात्मा तक बनने का उपदेश दिया। उन्होंने बताया कि मनुष्य का दुःख-सुख देवताओं के अधीन नहीं वरन् उसकी अपनी वृत्तियों के अधीन है। अतः उसे कर्म करने में सावधान रहना चाहिये। अच्छे कर्म करने पर मनुष्य विकास पथ पर अग्रसर हो परमात्मपद को प्राप्त कर सकता है। यह विकास निजी भावों के अतिरिक्त बाह्य द्रव्य, क्षेत्र और काल पर भी निर्भर करता है। निजी भाव और बाहर की स्थिति की प्रतिकूलता में जीव का पतन और अनुकूलता में उत्थान होता है। अतः यह मनुष्य के लिये आवश्यक है कि वह अपने भावों में सुधार के साथ देश

१. R. C. Majumdar : Ancient India, 1952 Edition, Chapter V, p. 176.

२. ॐ स्वाति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषाविश्ववेदा स्वस्तीनस्तार्क्ष्यो
अरिष्टनेमि स्वास्तिनो बृहस्पतिदधातु, ऋग्वेद, अध्याय ६, वर्ग १६, सूत्र २२

३. सामवेद अध्याय २५, मन्त्र १९

४. Encyclopaedia of Religion, Vol II. pp. 199-200; Vol VII. p. 472



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काल का भी सुधार करे। इस प्रकार लोक-सेवा और सुधार में ही अपना सुधार एवं कल्याण है। मनुष्य का सर्वोच्च धर्म है कि वह जीवों को समान समझकर उनके प्रति दया का व्यवहार करता रहे। बड़ों के प्रति श्रद्धा का एवं बुरों, दुर्बुद्धि और दुर्व्यवहारियों के प्रति चिकित्सक के समान व्यवहार करना आवश्यक है। एकान्त पद्धति के दृष्टिकोण के कारण व्यक्ति हठी, अहंकारी, संकीर्ण विचारों वाला और मनोमालिन्यमय होता जाता था। इसीलिये भगवान् महावीर ने एकान्त पद्धति की कड़ी आलोचना की तथा अनेकान्तवाद का पोषण किया, जिसके अनुसार प्रत्येक बात को उदार और विभिन्न दृष्टिकोणों से समझने का उपदेश दिया। उनका कथन था "वस्तु के कण कण को जानो, तब उसके स्वरूप को कहो।" इससे विचार के क्षेत्र में सहिष्णुता आई। इस प्रकार अनेकान्तवाद के मूल में है—सत्य की खोज। सत्य को विभिन्न दृष्टिकोणों से जानकर स्याद्वाद के कथन द्वारा जीवन के धरातल पर उतरना यही उनका वैशिष्ट्य है।

यह एक आध्यात्मिक या बौद्धिक क्रान्ति थी। इसी कारण इसे भारतीय इतिहास में बौद्धिक क्रान्ति के नाम से पुकारा गया है। भगवान् महावीर को इन्द्रियों पर विजय करने के कारण "जिन" कहा गया और इनके धर्म को तथा उसके अनुयायियों को जैन कहा जाने लगा।

इस क्रान्ति का भारतीय इतिहास पर व्यापक प्रभाव पड़ा। भारतीय सभ्यता और संस्कृति का कोई अंग ऐसा नहीं है जो जैन धर्म के प्रभाव से अछूता रहा हो। अतः यहां हम संक्षेप में उसका दिग्दर्शन करना आवश्यक समझते हैं।

१. **राजनैतिक प्रभाव** :—जैन धर्म बौद्ध धर्म की अपेक्षा तीव्रता से फैलना प्रारम्भ हुआ।[1] उत्तर में कन्नौज, गान्धार वल्ख से लेकर दक्षिण में सिंहलद्वीप तक, पश्चिम में सिन्धु, सुराष्ट्र से लेकर पूर्व में अंग, बंग तक सभी स्थानों और जातियों में वह धर्म, व्याप्त हो गया। न केवल भारत में वरन् भारत के बाहर के देशों में भी यह धर्म फैला। महावंश[2] नामक बौद्ध ग्रंथ से प्रतीत होता है कि ४३७ ई० पूर्व में सिंहलद्वीप के राजा ने अपनी राजधानी अनुरुद्धपुर में जैन मन्दिर व मठ बनवाये थे जो ४०० वर्ष तक कायम रहे। भगवान् महावीर के समय से लेकर ईसा की प्रथम शती तक मध्य एशिया और लघु एशिया के अफगानिस्तान, ईरान, ईराक, फिलिस्तीन, सीरिया, मध्य सागर के निकटवर्ती यूनान, मिश्र, ईथोपिया (Ethopia) और एबीसीनिया आदि देशों से जैन श्रमणों का सम्बन्ध व सम्पर्क बराबर बना रहा। यूनानी लेखकों के कथन से सिद्ध होता है कि पायेथोगोरस (Pythegorse), पेर्रहो (Pyrrho), डायजिनेस (Diogenes) जैसे यूनानी तत्त्ववेत्ताओं ने भारत में आकर जैन श्रमणों से शिक्षा-दीक्षा ग्रहण की थी। सिकन्दर महान् के साथ जाने वाले जैन ऋषि कल्याण के पश्चात् सैकड़ों जैन श्रमणों ने उक्त देश में समय-समय पर जाकर अपने धर्म का प्रचार किया और वहां पर अपने मठ बनाकर रहते रहे।[3] कुछ विद्वानों का मत है कि प्रभु ईसा ने इन्हीं श्रमणों से जो कि फिलिस्तीन में मठ बनाकर बहुत बड़ी संख्या में रह रहे थे, अध्यात्म विद्या के रहस्य को सीखा था।[4]

भगवान् महावीर के समय में ही बिम्बसार, अजातशत्रु, उदयन, शतानिक, प्रसेनजित और वैशाली के लिच्छवी शासक जैन धर्म के समर्थक बने। वैशाली (विदेह) में उस समय भी बहुत बड़ी संख्या में जैन थे। उसके उपरान्त महाराजा नन्दवर्द्धन जो कलिंग से जिन मूर्ति मगध में लाये थे, जैन धर्म के अच्छे उपासक हुए। शिशुनाग और नन्द राजाओं ने भी जैन धर्म को अपनाया। चन्द्रगुप्त मौर्य न केवल जैन धर्म के अनुयायी थे वरन् अपने जीवन के अन्तिम दिनों में वह जैन भिक्षु हो गये थे। उन्होंने भद्रबाहु के साथ अकाल के समय जैन भिक्षु के रूप में दक्षिण की ओर प्रस्थान किया था। सम्प्रति, शीलसक मौर्य और वृहद्रथ भी जैन धर्म के अनुयायी थे। जैन सम्राट् ऐल खारवेल ने उस मूर्ति को जो महाराजा नन्दवर्द्धन द्वारा ले जाई गई थी, २७५ वर्ष उपरान्त पुष्यमित्र शुंग को परास्त कर वापिस कलिंग में लाकर पुनः वहाँ पर स्थापित किया। इसी सम्राट् ने शकों और यूनानी राजा मनेन्द्र (मेनेडर) को परास्त कर देश को विदेशियों से मुक्त किया। यहीं यवन सम्राट् मनेन्द्र अपने अन्तिम जीवन में जैनधर्म में दीक्षित हो गये थे।[5] क्षत्रप सम्राट् नहपान विक्रमादित्य जो जैन धर्म में दीक्षित होकर भूतवलि नामक दिगम्बर जैन आचार्य बन गये थे, ने षट खराडागम शास्त्र की

1. R. C. Majumdar : Ancient India, Chap. V, page 178.
2. Prof. Buhler— An Indian sect of the Jainas, page 37
3. (A) Dr. B. C. Lav—Historical Gleanings, page 42.
   (B) Sir williams James—Asiatic Researches, Vol. III, page 6.
   (C) Mogathenes—Ancient India, page 104.
   (द) बा० कामता प्रसाद—दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि, पृ १११—१३, २४३
४. पं० सुन्दर लाल—हजरत ईसा और ईसाई धर्म, पृ० २२.
५. वीर——वर्ष २, पृष्ठ ४४६-४४९.



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचना की।[1] कनिष्क, हुविष्क और वासदेव आदि शक राजाओं के समय में भी जैन धर्म की मान्यता बहुत थी। रुद्रसिंह, अमोघवर्ष, जयसिंह, सिद्धराज सभी ने जैन धर्म को प्रमुख मान्यता प्रदान की। गुजरात का प्रतापी शासक कुमारपाल जिनके आचार्य हेमचन्द्र जैसे जैन विद्वान् गुरू रहे, जैन धर्म के अनन्य उपासक थे। आपने अपने शासन में सम्पूर्ण साम्राज्य से मांस, मदिरा आदि का निषेध करा दिया।

दक्षिण में तो जैन धर्म और तीव्रता से फैला। वहाँ के कदम्ब, चेर, चोल, पांड्य, गंग, होयसाल आदि राजवंशों में अनेक प्रसिद्ध जैन शासक हुए। यहां के जैन सेनापति और दंडनायक जैसे श्री विजय, चामुंडराय, गंगराज और हुल्ल ने भी भारतीय इतिहास को काफी प्रभावित किया। केवल चामुंडराय, जिन्होंने ८४ युद्ध लड़कर विरूद पद प्राप्त किया था, ने श्रवणबेल्गोला की प्रसिद्ध ५७ फीट ऊँची एक पत्थर की बाहुबली की मूर्ति निर्मित कराकर भारतीय संस्कृति को अपूर्व योगदान दिया। मेवाड़ के सच्चे भक्त भामाशाह जिन्होंने अतुल धन-राशि देकर हल्दी घाटी के युद्ध में अपना जौहर दिखाया था, जैन ही थे। अकबर के शासन काल में इस धर्म के मानने वालों की संख्या करोड़ से भी अधिक थी। अकबर के समय में जैन विद्वान् हरिविजय सूरि, विजयसेन सूरि, भानुचन्द्र उपाध्याय उनके दरबार में रहे थे। इस प्रकार जैन सम्राट्, विद्वान् व पंडित विभिन्न रूप से भारतीय इतिहास को सदैव प्रभावित करते रहे हैं।

२. **सामाजिक प्रभाव :**—सामाजिक क्षेत्र में जीवन का कोई ऐसा आयाम नहीं जिसे जैन धर्म ने प्रभावित न किया हो। पारिवारिक जीवन, रहन-सहन, भोजन, वस्त्र, खान-पान, आमोद-प्रमोद, स्त्रियों की स्थिति और अन्य समाज के वर्ग सभी को जैन धर्म का योगदान रहा है। परिवार में प्रातः स्नान कर नित्य नियम से पूजन व स्वाध्याय करने मन्दिर में जाना, सायं को रात्रि होने से पूर्व भोजन कर उसके उपरान्त मन्दिर में आरती कर धार्मिक प्रवचन आदि सुनना—इस प्रकार की व्यवस्था से उन्होंने जीवनक्रम को नियंत्रित कर दिया। मांसाहार निषेध, बिना छना जलपान निषेध और अन्य खान-पान के नियम जहाँ धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से आवश्यक हैं वहाँ स्वास्थ्य की दृष्टि से भी परमावश्यक और लाभकारी हैं। स्त्रियों को भी पुरुषों के समान अध्ययन, स्वाध्याय और भजन-पूजन का अधिकार प्रदान कर उन्हें भी पुरुषों के समान मान्यता प्रदान कर समाज में उच्च स्थान दिलाया। जाति व्यवस्था के बन्धनों को त्याग कर सभी जाति को पूजन, धर्म और अन्य सभी प्रकार की समान सुविधा प्रदान कर एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के शोषण को रोका। भगवान् महावीर के संदेश, "जो तुम हो वह दूसरा है"—"स्वरूप दृष्टि से आत्मा एक है, अर्थात् समान है"—"समस्त जीवों को अपने समान समझो"—से उन्होंने विभिन्न जातियों से उच्च और नीच, महानता और हीनता की भावना निकाली। "जन्म से कोई न ब्राह्मण है और न शूद्र" यही महावीर का समभाव समाज में क्रांति लाया। इतना ही नहीं "प्रत्येक आत्मा परमात्मा बन सकती है"—इस सन्देश से आपने सभी वर्ग और जाति के लोगों को प्रगति की ओर बढ़ने को अग्रसर किया। महावीर की सदैव यह दृष्टि रही कि आदर्श समाज कैसा हो। इस हेतु ही आपने निरपराधी को दण्ड न देना, असत्य न बोलना, चोरी न करना, न चोर को किसी प्रकार की सहायता देना, स्वदार-संतोष के प्रकाश में काम भावना पर नियन्त्रण रखना, आवश्यकता से अधिक संग्रह न करना, व्यय-प्रवृत्ति के क्षेत्र की मर्यादा करना, जीवन में समता, संयम, तप और त्याग वृत्ति को विकसित करना आदि नियमों को प्रचारित किया। भगवान् महावीर की यह सामाजिक क्रान्ति हिंसक न होकर अहिंसक है, संघर्षमूलक न होकर समन्वयमूलक है। अतः सामाजिक क्षेत्र में इसका पर्याप्त योगदान रहा।

3. **धार्मिक प्रभाव**—धार्मिक दृष्टि से जैन धर्म ने भारतीय समाज को सबसे अधिक योगदान दिया। क्योंकि उस समय धर्म में अनेक कुरीतियाँ व्याप्त थीं। धर्म उपासना की नहीं प्रदर्शन की वस्तु हो गया था, यज्ञों में पशुओं का बलिदान तक धार्मिक क्रिया बन चुका था। अतः उन कुरीतियों को दूर करने हेतु भगवान् महावीर ने प्रचलित उपासना पद्धति का तीव्र शब्दों में खण्डन किया। उन्होंने बताया कि ईश्वर को प्राप्त करने के साधनों पर किसी वर्ग विशेष का अधिकार नहीं है। उसे प्रत्येक व्यक्ति बिना धर्म, वर्ग या लिंग के भेद के मन की शुद्धता और आचरण की पवित्रता के आधार पर प्राप्त कर सकता है। इस निमित्त केवल अपनी कषायों—क्रोध, मान, माया, लोभ का त्याग आवश्यक है। इतना ही नहीं आपने प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं ईश्वर बनने में समर्थ घोषित कर जनता के हृदय में शक्ति, आत्मविश्वास और आत्मबल का तेज भरा। आपके प्रमुख दार्शनिक सिद्धान्त जिनका भारतीय दर्शन पर प्रभाव पड़ा, निम्न हैं :—

(क) **अहिंसा मार्ग** :—भगवान् महावीर का कथन, "किसी भी प्राणी का घात मत करो", "जिस प्रकार तुम्हें दुःख-सुख का अनुभव होता है, उसी प्रकार दूसरे प्राणी भी दुःख-सुख का अनुभव करते हैं अतः जो तुम्हें अपने लिए नहीं रुचता हो, उसका व्यवहार दूसरे के प्रति मत करो। इसीलिए सदा अहिंसा के पालन में सतर्क रहो," उनके अहिंसा धर्म का मूलाधार है। वास्तव में अहिंसा ही जैन

१. बा० कामता प्रसाद —दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि, पृ० १२०



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शन की आधार भूमि है। सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह सभी इसी के अंग हैं। भगवान् के इस उपदेश से प्रभावित हो जनता हिंसा से घृणा करने लगी। सभी धर्मों ने अहिंसा के इस सिद्धान्त को अपनाया। भगवान् महावीर ने तो अहिंसा का प्रयोग समग्र जीवन के लिए बताया—चाहे सामाजिक, आर्थिक या राजनैतिक कोई-सा क्षेत्र क्यों न हो। सामाजिक क्षेत्र में ऊँच-नीच का भेदभाव त्यागकर समता की भावना से जीवन को सन्तुलित किया। आर्थिक जीवन को उचित रूप से संचालित करने हेतु परिग्रह को मर्यादा बना कर चलना बताया तथा राजनैतिक जीवन को ठीक प्रकार संचालित करने हेतु कर-ग्रहण सिद्धान्त में यह बताया कि राजा को प्रजा से उतना ही लेना चाहिए जो उचित हो। इस हेतु उन्होंने भौंरे के फूल से रस ग्रहण के सिद्धान्त के अनुसार कर लेने को अपनाने का समर्थन किया है। आधुनिक युग में महात्मा गांधी ने अहिंसा के इसी सिद्धान्त को ग्रहण कर और उसका प्रयोग कर सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया है।

(ख) **अपरिग्रह :**—अपरिग्रह का अर्थ है—परिग्रह पर दृढ़ता के साथ उत्तरोत्तर संयम रखना। यह वास्तव में अहिंसा का ही एक अंग है। आपके इस सिद्धान्त को अपनाने से समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियां समाप्त होने लगेंगी। स्वेच्छा से सम्पत्ति के अधिग्रहण पर संयम रखने से सामाजिक न्याय और उपभोग-वस्तुओं के समान वितरण की समस्या सुलझेगी। इस सिद्धान्त को पूर्णरूपेण अपनाने से वर्ग-संघर्ष समाप्त हो जाएगा और शनैः-शनैः एक विवेकशील समाज की रचना हो जाएगी। आपके इस सिद्धान्त को हम साम्यवाद के नाम से भी पुकार सकते हैं।

(ग) **अनेकान्तवाद**:—उस समय अनेक मत-मतान्तर प्रचलित होने के कारण वे एकांगी सत्य को ही सम्पूर्ण सत्य समझते थे। सब का दावा था कि जो कुछ हमारा कथन है वही सच्चा है और सब झूठे हैं। अनेकान्त द्वारा आपने प्रत्येक वस्तु को ठीक समझने के लिये उसे विभिन्न दृष्टियों से देखना और पृथक्-पृथक् पहलुओं से विचार करना बता कर सर्वांगीण सत्य का स्वरूप बताया। इस सिद्धान्त ने समाज में सहिष्णुता उत्पन्न की। दूसरों के दृष्टिकोण को समझने की प्रवृत्ति भी लोगों में आई। वास्तव में यह सिद्धान्त जो स्याद्वाद भी कहा गया है, भारतीय दर्शन को जैन धर्म की अनूठी देन है।

(घ) **कर्मवाद** – भगवान् महावीर ने कहा—तुम जैसा करोगे वैसा फल पाओगे। कोई भगवान् तुम्हें दुःख-सुख नहीं देता किन्तु पूर्वबद्ध कर्मों का प्रतिफल तुम्हें समय आने पर अपने आप मिल जाता है। इस प्रकार यह कर्म सिद्धान्त हमें बताता है कि अपने भाग्य के निर्माता हम स्वयं हैं। अतः सदैव शुभ आचार-विचार रखो जिससे कर्म तुम्हारी आत्मा को मलिन न कर सके। इन कर्मों का नाश करने से ही आत्मा परमात्मा बन सकती है। इसमें किसी की दया की आवश्यकता नहीं। तुम स्वयं स्वावलम्बी बनो और नर से नारायण बन जाओ। इस प्रकार आपने कर्मवाद के द्वारा आत्मस्वातन्त्र्य का पाठ पढ़ाया। इस सिद्धान्त ने भी भारतीय समाज और दर्शन को बहुत बड़ी मात्रा में प्रभावित किया। आज आप प्रत्येक भारतवासी को कर्म सिद्धान्त का अलाप गाते हुये पाते हैं।

(ङ) **गुणवाद :**—उस समय समाज में उच्च-नीच की गणना जाति से ही होती थी। भगवान् महावीर ने बताया—"मनुष्य जाति एक है। यह केवल गुण हैं जो मनुष्य को ऊँचा-नीचा बनाते हैं।" अतः आपके इस सिद्धान्त से समाज में अनाचार पैदा करने वाले व्यक्तियों को कठोर आघात लगा। अब से श्रमण संघ में शूद्रों और ब्राह्मणों सबको बराबर का दर्जा दिया जाने लगा। इस सिद्धान्त से जनता में अच्छे गुण वाला बनने की भावना भी व्याप्त होने लगी। इस प्रकार धीमे-धीमे समाज में शान्ति स्थापित हो गई।

इनके अतिरिक्त आपने संयम, सत्य, दया, क्षमा, शूरता और अस्तेय आदि जो सिद्धान्त प्रस्तुत किये वे भी अनुपम हैं।

४. **आर्थिक प्रभाव** :—भगवान् महावीर स्वयं एक राजा के पुत्र थे और अर्थ की उपयोगिता को भी भली-भाँति जानते थे। अतः उन्होंने यह निश्चित मत जनता के समक्ष प्रस्तुत किया कि सच्चे जीवनानन्द के लिये आवश्यकता से अधिक संग्रह कदापि उचित नहीं। आवश्यकता से अधिक संग्रह से व्यक्ति लोभ-वृत्ति में फंस जाता है और समाज का शेष अंग उस वस्तु-विशेष से वंचित रह जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि समाज में दो वर्गों का निर्माण हो जाता है—प्रथम सम्पन्न वर्ग और दूसरा विपन्न वर्ग। अब जब दोनों के स्वार्थों में टकराव आता है तो उन दोनों में संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। इस बात को कार्ल मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष का नाम दिया। उन्होंने इसका समाधान एक हिंसक क्रान्ति में बताया। परन्तु भगवान् महावीर ने इस आर्थिक असमानता को दूर करने हेतु अपरिग्रह की विचारधारा प्रस्तुत कर वर्ग-संघर्ष उत्पन्न होने का अवसर न दे, उसे मूल से ही समाप्त कर दिया। जब वर्ग ही निर्मित न होंगे तो संघर्ष भी न होगा। इस प्रकार आपने उसे जड़ से ही समाप्त कर दिया। आपने वस्तु के प्रति ममत्वभाव को छोड़कर समभाव का सिद्धान्त प्रस्तुत किया, जिससे जब समभाव मन में आएगा तब एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को हड़पने का प्रयास न करेगा। फिर वह किसी को अपने अधीन रखने की भावना न करेगा। सब ही स्वतन्त्र रूप से अपने व्यक्तित्व का विकास करेंगे। इस प्रकार की सर्वहितकारी भावना से निश्चय ही विश्वशान्ति को बल मिलेगा। इस अपरिग्रह के आने से समाज में शोषण वृत्ति समाप्त हो जाएगी। पारस्परिक अविश्वास, ईर्ष्या, द्वेष, छल-कपट, दुख-दारिद्रय शोक-सन्ताप, लूट-खसोट आदि सबका प्रमुख कारण परिग्रह वृत्ति है। इससे बचने पर और परिमित



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिग्रह से समाज में से इन्हें कम किया जा सकता है। आपके आर्थिक सिद्धान्तानुसार शासक को भी, जैसा कि अहिंसा सिद्धान्त में ऊपर लिखा गया है, भौंरे के फूलों से रस ग्रहण के समान जनता से यथावश्यक ही कर लेना चाहिए। इस कर ग्रहण और राज्य व समाज कार्यों पर व्यय हेतु दूसरा उदाहरण आप सूर्य का देते हैं। जिस प्रकार सूर्य वसुन्धरा से वाष्प के रूप में फल (कर) लेता है और बाद में मेघ के रूप में सबको वितरित कर देता है उसी प्रकार शासक को जनता से कर एकत्रित करना चाहिए और जनहितार्थ बिना अपने पराये के भेद के लगा देना चाहिए। अतः आपका समता अपरिग्रह आदि का सिद्धान्त आर्थिक क्षेत्र में क्रान्ति लाया।

५. **साहित्यिक प्रभाव की देन** :—साहित्यिक क्षेत्र में जैन साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसे कई नवीन भाषाओं के निर्माण में प्रमुख योगदान देने वाला कहा जा सकता है। इस धर्म के अधिकांश प्रारम्भिक लेखकों ने प्रचलित भाषा में अपने सिद्धान्तों व ग्रन्थों की रचना की। इसी कारण संस्कृत से प्राकृत और उससे अपभ्रंश का जन्म हुआ। बाद में शौरसेनी अपभ्रंश से हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओं और अर्द्ध-मागधी अपभ्रंश से पूर्वी हिन्दी का जन्म हुआ।

जैन साहित्य बहु आयामी, बहुरंगी और बहुक्षेत्रीय कहा जा सकता है। उत्तरी भारत में पंजाब, बिहार से लेकर सुदूर लंका तक जैन साहित्य और धर्म का प्रचार हुआ। प्राचीनकाल के दिगम्बर साहित्यकारों में कुन्दकुन्द, उमास्वामि, समन्तभद्र, पूज्यपाद, अकलंक, विद्यानन्दिन, माणिस्यनन्दिन, वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र और सोमदेव प्रमुख हैं। कुन्दकुन्द ने प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, रयणसार, उनुपेक्खा आदि प्रमुख ग्रंथ लिखे। आप जैन साहित्य के कीर्तिस्तम्भ हैं। आपके बाद उमास्वामि नामक आचार्य ने संस्कृत में तत्त्वार्थसूत्र और अनेक ग्रन्थ रचे। आपको आध्यात्मविशारद कहा जा सकता है। समन्तभद्र और अकलंक दक्षिण और उत्तर दोनों के सांस्कृतिक सन्धि पत्रों के रूप में स्मरणीय हैं। समन्तभद्र ने लगभग समस्त देश की यात्रा कर अनेक ग्रंथ रचे जिनमें रत्नकरण्ड-श्रावकाचार सबसे प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण है। पूज्यपाद ने ३७ कलाओं और विज्ञानों की चर्चा कर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया। अकलंक आठवीं शती में एक उच्चकोटि के नैयायिक हुये जिनकी समता करने वाले इस भूमि पर बहुत कम हुये हैं। ९वीं शती में वीरसेन हुये जिनके शिष्य जिनसेन ने दक्षिण में अपूर्व ग्रन्थों की रचना की। आचार्य जिनसेन का वर्द्धमान पुराण, पार्श्वाभ्युदय महापुराण, हरिवंश पुराण और आदि पुराण तथा जयधवल टीका विशिष्ट कृतियां हैं। सोमदेव की यशस्तिलक और नीति वाक्यामृत क्रमशः साहित्य और राजनीति की महोपलब्धियां हैं।

इनके अतिरिक्त शिवार्य की भगवती आराधना, पुष्पदन्त भूतवलि का षट्खण्डागम, गुणधर का कसायपाहुड़, निर्मलसूरि की उपचरियम, गुणभद्र की उत्तरपुराण भी इस काल की प्रमुख कृतियाँ हैं।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय के ग्रंथों में ११ अंग, १२ उपांग, ६ छेद सूत्र और १० प्रकीर्णक सर्वप्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। इनके अधिकांश ग्रन्थ अर्द्धमागधी (शौरसेनी मिश्रित) भाषा में हैं। इन ग्रन्थों पर अनेक आचार्यों ने भाष्य टीकायें आदि लिखी हैं। इनके अतिरिक्त जैन-धर्म के तीर्थंकर तथा राम, कृष्ण आदि ६३ शलाकापुरुषों के ऊपर भी अनेक ग्रन्थ और काव्य लिखे गये।

चरित्र और कथाओं के माध्यम से भी जैनाचार्यों ने विभिन चरित्रों का वर्णन देने के साथ आचार, विचार, कर्मव्रत, उपवास, आदि को स्पष्ट करने हेतु पर्याप्त ग्रन्थों की रचना की है। वृहतकथाकोश, आख्यानमणिकोश, यशोधर चरित्र, श्रीपाल चरित्र, कुवलयमाला, सुगन्ध दशमी, यशस्तिलक चम्पू, जीवन्धर चम्पू, चन्द्रप्रभु चरित्र, गद्यचिन्तामणि, तिलकमन्जरी, कालकाचार्य कथानक, उत्तमा चरित्र, चम्पका श्रेष्ठ ग्रन्थ हैं। अन्य रचनाओं में पालगोपाल कथानक, सम्यक्त कौमदी, अन्तरकथा संग्रह, कथा महोदधि व कथा रत्नाकर आदि अनेक ग्रन्थों द्वारा भारतीय साहित्य और समाज को प्रभावित किया है।

धर्मेतर विषयों पर भी जैन साहित्यकारों व आचार्यों ने पर्याप्त काम किया है। ज्योतिष, गणित और आयुर्वेद के अनेक ग्रन्थ उनके द्वारा रचे गये। सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, ज्योतिष्करण पर मलयगिरी की टीकायें महत्त्वपूर्ण हैं। हरिभद्र सूरि, नरचन्द्र, हर्षकीर्ति, महावीराचार्य, श्रीधराचार्य और राजादित्य के ज्योतिष और गणित के ग्रन्थ भारतीय साहित्य की अनूठी देन हैं। व्याकरण, अलंकार, छन्द, नाटक, शकुन-विचार और संगीत आदि पर भी जैनाचार्यों ने अभूतपूर्व काम किया है। देवनन्दि का जैनेन्द्र व्याकरण, हेमचन्द्र आचार्य का सिद्ध हेमशब्दानुशासन, देशी नाम माला और द्वाश्रय महाकाव्य, साधु सुन्दर गणि का धातुरत्नाकर, त्रिविक्रम का प्राकृत शब्दानुशासन, कोश क्षेत्र में धनमाल का पाइअलच्छी नाम माला, धनंञ्जय की नाम माला, धरसेन का विश्वलोचन कोश, हेमचन्द्र का अभिधान चिन्तामणि, नाम माला, अलंकार क्षेत्र में हेमचन्द्र का काव्यानुशासन वाग्भट्टालंकार तथा अजितसेन का अलंकार चिन्तामणि, छन्द के क्षेत्र में रत्नमंजूषा, जयकीर्ति का छन्दानुशासन, हेमचन्द्र का द्वन्दोनुशासन, नाट्य क्षेत्र में रामचन्द्र सूरि और गुणचन्द्र गणि का नाट्य दर्पण, संगीत में अभयचन्द्र का संगीतसार अनुपम कृतियां हैं।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रविड़ भाषाओं के साहित्य को समृद्ध करने में भी जैन आचार्यों का प्रशंसनीय योगदान रहा है। तमिल भाषा के १८ नीति ग्रन्थों कुरल और नालडिवार, पाँच महाकाव्यों में शिलप्पदिकारम, वलयापति और चिन्तामणि तथा पाँचों लघु काव्य प्रसिद्ध जैन ग्रन्थ हैं। तेलुगू के नन्नयमट्ट का महाभारत भी अच्छा ग्रन्थ है। कर्नाटक साहित्य पर तो जैनधर्म का सर्वाधिक प्रभाव रहा है। आदि पुराण और भारत के लेखक महाकवि पम्प, नन्ननागवर्मा, कोशीराज, राजदित्य, श्रीधराचार्य कीर्तिवर्मा, जगछल, मंगरस, सिंहकीर्ति आदि जैन साहित्यकार प्राचीन काल से मध्यकाल तक जैन साहित्य का सृजन करते रहे। १२ वीं सदी में आचार्य हेमचन्द्र ने संस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी, राजस्थानी, अपभ्रंश आदि भाषाओं में अनेक ग्रंथ रचकर अपनी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। बाद में मध्ययुग में ही राजशेखर का प्रबन्ध कोश, विमलसूरि का पद्मचरित्र, विक्रम का नेमदूत, मालवसुन्दरि कथा, यशोधरा चरित्र आदि प्रमुख कृतियां रची गईं।

उसके उपरान्त १५८१ में हिन्दी के विद्वानों में गौरवदास, रायमल, नैनसुख, समयसुन्दर, कृष्णदास, बनारसीदास, भगवतीदास, कविरत्न शेखर, भूधरदास, दौलतराम, महोपाध्याय रूपचन्द्र, पं० टोडरमल आदि सैकड़ों कवि हुए। इन विद्वानों और कवियों के ग्रन्थों को अध्ययन कर प्रकाश में लाने का उत्तरदायित्व आधुनिक विद्वानों और शोधकर्ताओं का है।

६. **कलाशास्त्रीय प्रभाव**—कला के क्षेत्र में भी जैनधर्म ने पर्याप्त योग दिया। प्राचीनकाल में ईसा से छठी शती पूर्व के उपरान्त प्राप्त मूर्तियों और अन्य ऐतिहासिक प्रमाण इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। उदयगिरि और खण्डगिरि की जैन गुफायें खुजराओं, शत्रुंजय, गिरनार के मन्दिर, देउलवाड़ा के जिनालय, हम्मारपुर कुम्भरिया, श्री राणकपुर तीर्थ का १४४४ स्तम्भों वाला विशालकाय जिनालय, लोद्रवा मन्दिर इसमें विशेष उल्लेखनीय हैं। शत्रुंजय पर्वत पर ९ विशाल दुर्ग हैं जिनमें छोटे बड़े ३ सहस्र जिनालय और २५ सहस्र से ऊपर प्रतिमायें हैं। गिरनार पर्वत के जैन तीर्थ के सैंकड़ों मन्दिरों में सम्राट् कुमारपाल, महामन्त्री वस्तुपाल-तेजपाल और संग्रामसौनी की टूंक शिल्प की दृष्टि से विशेष वर्णनीय हैं। आबू पर्वत पर देउलवाड़ा में विमलदंड नायक का आदिनाथ जिनालय, लौद्रना (जैसलमेर) का पार्श्वनाथ मन्दिर, ग्वालियर की प्रतिमायें, उड़ीसा की हाथी गुफायें, दक्षिण भारत की गोमटेश्वर की बाहुबलि की ५७ फुट ऊँची प्रतिमा संसार में अद्भुत और आश्चर्यजनक हैं। इनके अतिरिक्त मथुरा, बिहार में चौसा में प्राप्त मूर्तियां, ललितपुर देवगढ़ की मूर्तियां, बिहार में पार्श्वनाथ की मूर्तियां, दक्षिण भारत की अनेक मूर्तियां, जैनधर्मशालायें, कीर्तिस्तम्भ मानस्तम्भ स्तूप, पावापुरी, राजगिरि, सोनागिरि की पहाड़ियों में बने जैन मन्दिर और महावीर जी, पद्मपुरी (जयपुर) के जैन मन्दिर भी कला की अद्भुत कृतियां हैं।

वास्तव में पूर्ण जैन मन्दिर में कला की दृष्टि से अनेक स्थान दर्शनीय होते हैं। उन पर विभिन्न प्रकार की कलाकारी ध्यान से देखने योग्य होती है। जैसे—सीढ़ियां, शृंगार चौकी, परिकोष्ठ, सिंहद्वार, प्रतोली, निज मन्दिर द्वार, मूलगम्भारा और उसकी वेदिका। कला के काम में अधिकांश जैनधर्म कथाओं का भाव अंकित किया होता है। स्थापत्य की दृष्टि से जैन मन्दिर सर्वांगपूर्ण होते हैं। इनका अध्ययन करना जहाँ आनन्दमय है वहाँ भारतीय संस्कृति को भी अपार लाभकारी होगा।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जैनधर्म और महावीर संस्कृति का, भारतीय इतिहास, उसकी सभ्यता और संस्कृति को अपूर्व योगदान है। भारतीय जीवन का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जिस पर जैन संस्कृति का प्रभाव दृष्टिगत न होता हो।

## भगवान् महावीर का संदश

भगवान् महावीर के सन्देश और उनके लौकिक जीवन के संबंध में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने का भी हमारे लिये ही नहीं समस्त संसार के लिये विशेष महत्व है। 'अहिंसा परमो धर्मः' का सन्देश उनकी अनुभूति और तपश्चर्या का परिणाम था। महावीर के जीवन से मालूम होता है कि कठिन तपस्या करने के बाद भी वे शुष्क तापसी अथवा प्राणियों के हित-अहित से उदासीन नहीं हो गये थे। दूसरों के प्रति उनकी आत्मा स्नेहार्द्र और सहृदय रही। इसी सहानुभूतिपूर्ण स्वभाव के कारण जीवन के सुख-दुख के बारे में उन्होंने गहराई से सोचा है और इस विषय में सोचते हुए ही वे वनस्पति के जीवों तक पहुंचे हैं। उनकी सूक्ष्म दृष्टि और बहुमूल्य अनुभव, जिसके आधार पर वे अहिंसा के आदर्श पर पहुंचे, साधारण जिज्ञासा का ही विषय न रहकर वैज्ञानिक अध्ययन तथा अनुसंधान का विषय होना चाहिए।

☐ राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद

वैशाली-अभिनन्दन-ग्रन्थ पृ० १०६ से साभार



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org